मुखपृष्ठ

साहित्यसुधा

साहित्यकारों की रचना स्थली

वर्ष: 3, अंक 46, अक्टूबर(प्रथम) , 2018

साहित्यकारों की वेबपत्रिका

लौट आओ दीपशिखा

(धारावाहिक उपन्यास)

लेखिका

संतोष श्रीवास्तव

गतांक से आगे

शायद दीपशिखा में चित्रकारी के साथ नृत्य का बीज भी उसी दिन पड़ा हो| उनके प्रश्न का समाधान हो गया था|उन्होंने दीपशिखा को एकांत में बुलाया- "बैठो दीपू|"दीपशिखा समझ गई..... माँ किसी मसले पर चर्चा करना चाहती हैं और निश्चय ही यह मसला उससे जुड़ा ही होगा| उसने अपने मनको तैयार किया|

"पहले ममा..... मेरीनई लिखी कविता सुनो.....

मैं मोहब्बत के सफ़े पर

इक तारीख़ सी सजी हूँ

और तू मेरे दिल के गोशे पर

हिना बनकर रचा है|

"क्या बात है दीपू..... प्रकृति के असली तत्त्व कोसमझ लिया है कि इस ज़िन्दग़ी में केवल प्रेमही सच है बाकीसब व्यर्थ..... लेकिन बेटी, जब हम प्रेम में डूबते हैं तो कोई साथी चाहिए होता हैवरनाप्रेम तनहा ज़िन्दग़ी में घुटकर रह जाता है|"

दीपशिखाटकटकी बाँधे सुलोचना को देखे जा रही थी| उसे लग रहा था जैसे मुकेश के साथ चलने का रास्ता अब सुगम होता जा रहा है|

"तो तलाशूँ कोई जीवनसाथी तुम्हारे लिए?"

"इस बार वहचौंकी- "क्यामाँ?"

सुलोचना ने अपनी बात दोहराई| इस बीच दीपशिखा को जवाब ढूँढने का मौका मिल गया- "नहीं माँ, मैं शादी के बंधनमें नहीं बँधना चाहती हूँ|"

"क्यों? कोई ख़ास वजह?"

दीपशिखा ख़ामोश रही..... वह कह भी सकती थी कि उसे मुकेश से प्यार है और वह उसी के साथ जीवन गुज़ारना चाहती है और अगर यह हो जाता है तो इससे बेहतर कुछ हो ही नहीं सकता|लेकिन वह अपेक्षाओं के घेरे में नहीं आना चाहती| शादी और कुछ नहीं बस एक दूसरे सेअपेक्षाओं का लम्बा सफ़र है|

“जवाब दो दीपू, तुम कौन से दिली मंथन से गुज़र रही हो?” दीपशिखा सावधानी से बात को ख़त्म करना चाहती थी कि माँ को शक भी न हो, दुख भी न हो और बेटी पर से उनका विश्वास डगमगाये भी नहीं|

माँ, मैं विश्वविख्यात चित्रकार, कवयित्री होने का सपना पाले हूँ| शादी इस सपने की क़तई इजाज़त नहीं देती| और माँ शादी तो एक आम बात है,हर व्यक्ति शादी करता है, परिवार बनाता है और एक दिन दुनिया से चल देता है| माँ, क्या तुम चाहोगी कि तुम्हारी बेटी साधारण जीवन जिये?”

सुलोचना उसके सुलझाव भरे वाक्यों में डूब गईं| उन्हें लगा जो वे नहीं कर पाईं वह दीपू कर रही है| जो वे नहीं सोच पाईं..... वह दीपू सोच रही है| असाधारण होकर वे भी जीना चाहती थीं पर समाज और परिवार के विद्रोही तेवरों को नकारते हुए सिर्फ प्रेम विवाह कर पाईं वे और फिर यूसुफ़के कदमों तले जन्नत की कामना में समर्पित होती गईं और रह गईं बस एक साधारणऔरत बनकर जोमोमसा पिघलती है पर अपने पिघलने का सबब नहीं जानती बस इतना जानती है कि उसका पिघलना दूसरों को उजाला दे रहा है जबकिवहअपने अंदर की उस आँच से पिघलती है जो औरत का रूप बख़्शतेवक़्त विधाता ने उसके सीने में उतार दी थी| सुलोचना ने दीपशिखा कोगले से लगा लिया, सीने में ऐसे दुबका लिया जैसे अपने पंखों के नीचे गौरैया अपने चूज़ों को दुबकाती है|

“मुझे तुम पर भरोसा है दीपू..... तुम जो करोगी ठीक ही करोगी|”

“शुक्रिया माँ..... माँ, मैं आम ज़िन्दग़ी के लायक नहीं| मुझे ऐसे ही अच्छा लगता है| धरती पर रहकर आसमान को देखना| उन आकाशगंगाओं को जिनमें करोड़ों सूरज और चाँद हैं|हमसुई की नोक बराबरभी तो नहीं हैं माँ|”

सुलोचनाने उसकी पीठ थपथपाई और अंदर रसोई घर में चली गईं| यूसुफ़ ख़ान का प्रश्न अनुत्तरित हीरहा| हालाँकि रात की तन्हाई में, अँधेरे में हाथ बढ़ाकर यूसुफ़ ख़ान ने सुलोचना की हथेली छुई थी|

“क्या कहा दीपू ने?”

सुलोचना ने सारी बातें बताते हुए कहा- “हमें वक़्त का इंतज़ार करना होगा|”

“कब तक?”

“बता नहीं सकती| परइसकेअलावा दूसरा विकल्प भी तो नहीं है हमारे पास|”

यूसुफ़ ख़ान ने लम्बी साँस हरी और अँधेरे में धीरे-धीरे उभरते छत के दूधियाझाड़फानूस पर नज़रें टिका दीं|

मुम्बई वापिसी की दीपशिखा की फ़्लाइट सुबह ३.३० की थी| रातको दाई माँ अपनी बेटी की जचकी कराके लौटी थीं और बहुत खुश थीं| लड़का जो पैदा हुआ था| रात को ही सुलोचना ने बूँदी के लड्डू मँगवाये थे| दाई माँ के लिए साड़ी और चूड़ियाँ..... ढेरसारे मेवे मिठाई, कपड़े, ज़ेवरजच्चा-बच्चादोनों के लिए दौलतसिंह के हाथ वे कल भिजवाएँगी ऐसा उन्होंने दाई माँ को बताया|दाई माँ की खुशी समेटे नहीं सिमट रही थी| वे ढोलक लेकर बैठ गईं और लगीं सोहरें गाने|पीपलवाली कोठी गीतों से गुलज़ार थी| कल सब कुछ शांत हो जायेगा सोचकर सुलोचना उदास हो गई|सबसे छुपाकर उन्होंने अपनी छलक आई आँखें रुमाल में दबा लीं|इस बार दीपशिखा की बिदाई बोझिलहो रही थी| यूसुफ़ ख़ान के लिए सुलोचना के लिए और खुद दीपशिखा के लिए भी..... जिन माँ पापा ने उसे चौदह बरस बाद पाया था उनकी अपेक्षाओं में खरी कहाँ उतर पा रही थी दीपशिखा?तो क्या वह स्वार्थी है, सिर्फअपने ही बारे में सोचती है? सहसा वह सुलोचना से लिपटकर सुबकपड़ी- “माँ..... मुझे लेकर दुखी मत रहना..... मैंने अपना जीवन कला को समर्पित कर दिया है| माँ, मैं खुद की रही कहाँ?” “ईश्वर तुम्हें सही राह दिखाये दीपू|” कहकर सुलोचना ने अपनी बिटिया को कलेजे से ऐसे भींचा मानो ईश्वर के दियेइस तोहफ़े को नज़र न लगे किसी की|

मुम्बई लौटकर ज़िन्दगी को ढरल्ले पर आ जाना चाहिए था पर ऐसा हुआ नहीं| कुछ दिन अवसाद में बीते सखी सहेलियों के साथ के बावजूद..... सुलोचना का चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ जाता| बार-बार वह अप्रश बोध से ग्रसित हो जाती, कई सवाल दिमाग़ में मँडराते, क्योंवह उन्हें खुश नहीं रख पा रही हैं क्याकर डाले ऐसा कि माँ के ख़ामोश होठ मुस्कुराने लगें?

“स्टूडियो क्यों नहीं आ रही हो? सब काम रुका पड़ा है|” फोन शादाब का था जबकि शेफ़ाली और मुकेश को वह तबीयत ख़राब होने के बहाने से टाल चुकी थी| शेफ़ाली तो क्या टलती..... आ धमकी घर- “यह क्या चेहरा बनालिया है, हुआक्या है तुझे?”

उसने सब कुछ बयान कर दिया..... शेफ़ाली हँस पड़ी- “इतनी सी बात? एक बार मुकेश से मिल ले, सब ठीक हो जायेगा, बेचारा मजनू बना तेरे घर और स्टूडियो की सड़कें नापरहा है|”

तैयार होकर दोनों स्टूडियो पहुँची..... फिर ढेरों सवाल..... कहाँथी? क्या हो गया था? प्रदर्शनीके दिन नज़दीक आ रहे हैं और आप जनाब.....

मुकेश दूर खड़ाबेहद उदास नज़र आ रहा था|

“अब आ गई हूँ न! काम पे लग जाती हूँ| तुम सब भी तो कलाकार हो, जानते नहीं कलाकारअपने मूडसे ही काम कर पाते हैं|”

“ओsss” दोस्तों के समवेत स्वर ने दीपशिखा के चेहरे पर मुस्कान ला दी| मुकेश को मानो ज़िन्दग़ी मिल गई| वह दीपशिखा के नज़दीक स्टूल पर बैठ गया| कैनवास पर इब्न-ब-तूता था|

“यार..... येइब्न-ब-तूता तुम्हारी थीम में फिट नहीं बैठ रहा..... इसे बनाकर अलग रख दो और थीम को कॉन्सन्ट्रेट करो|” मुकेश के कहने पर शेफ़ाली ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई.....

“ओ.के. बाबा..... लो इब्न-ब-तूता ये गया कोने में, बस|” दीपशिखा ने अधूरी पेंटिंग सचमुच कैनवास से उतार कर कोने में टिका दी|उसकी इस हरकत पर सब खुशी से चीख़ सा पड़े- “ये हुई न बात|”

“ओ.के. नो बहस..... अबहम काम पर लगें?” और दीपशिखा ने ब्रश उठाया|

बाकी लोग अपने-अपने स्टूडियो में चले गये| मुकेशतल्लीनता से दीपशिखा को देखे जा रहा था| शेफ़ालीको लगा इस वक्त उसका यहाँ मौजूदरहना ठीक नहीं- “चलो, मैंचलती हूँ| दीदी को आज शॉपिंगकरनी है| रूठ गईं तो मनाना मुश्किल हो जायेगा|”

दीपशिखासमझ गई..... उसकी सखी में गज़ब की समझ है| वह उसके चेहरे के भाव पढ़ लेती है और कभी उसे निराशनहीं करती| उसके जाते ही दीपशिखा मुकेश से अपनी थीम पर चर्चा करने लगी|

“मैं चाहती हूँ मुकेश कि चित्र ऐसे बनाऊँ जो केवल आँखों से ही दिखाई न दें बल्किभावों के द्वारा महसूस भी किये जा सकें|”

“मसलन?”

“मसलन कि मैं उन रंगों को बिखेरूँ जो अभिव्यक्ति से गूँथे हों..... काला रंग महज़ काला न दिखे..... एक भरी पूरी चंद्रविहीन रात दिखे..... रात का सन्नाटा दिखे..... दृश्य की बेचैनी दिखे..... सुनहले रुपहले रंग..... महज़ सुहावनापन न दें बल्कि एहसासकरायें दिन की समाप्ति का, सूरजकेडूबने का, पंछियों के घोंसलों में लौटने का..... मुकेश में रंगों के साथ-साथ भावों को भी उतारना चाहती हूँ|”

“तुम कर पाओगी ऐसा..... क्योंकि तुम एक कवयित्री हो..... तुमबिंदु से रंगों को निकालकर अभिव्यक्तिदोगी..... दीप, करो ऐसा, तुममें वो जज़्बाहै|”

जाने क्या हुआ..... कौन सा बोध..... कौन से अनागत का संकेत कि दीपशिखा सिहर उठी| उसका दिल तेज़ी से धड़कने लगा| ब्रश हाथ से छूट गया और वह मुकेश की बाँहों में समा गई| वह कहना चाहती

थी किहाँ, मैं कर पाऊँगी ऐसा..... वह कहना चाहती थी कि कर पाने में उसे उसका साथ देना होगा..... पर इस साथ की चाहत में दीपशिखा के आगे एकशून्य खुलता गया और उसने घबराकर आँखें मींच लीं|

अंकुरग्रुप ऑफ़ आर्ट की प्रदर्शनी मुम्बई में चर्चा का विषय बन गई| प्रतिदिन अखबारों में छपने लगा..... संभ्रांत घरों के और कला के पारखियों की शामेंप्रदर्शनी मन रखे चित्रों की चर्चा में गुज़रती रहीं| कुछ चित्रों को छोड़कर लगभग सभी चित्र बिक गये|दीपशिखा का बीएस एक चित्र नहीं बिका जो उसने आर्ट गैलरी को उपहार में दे दिया|सभी बेहद खुश थे| शुक्रवार की रात प्रदर्शनी ख़त्महुई और शनिवार इतवार मनाने को कोई माथेरान गयातो कोई खंडाला..... मुकेश और दीपशिखा महाबलेश्वर चले गये| दाई माँ को समझाकर कि "चिंता मत करना, सोम की सुबह मैं लौट आऊँगी|"

"पीपलवाली कोठी से फोन आया तो?" दाई माँ को जवाब चाहिए था|

"हाँ, तो कह देना, अब इतने दिन लगकर काम किया है तो दो दिन दोस्तों के साथ वीक एंड मनाएँगे और क्या?"

दाई माँ के पल्ले बात पड़ी नहीं..... अमीरों की अपनी जीवन पद्धति..... इतने साल पीपलवाली कोठी में गुज़ारकर न वे समझ पाई हैं और न समझना चाहतीं| वैसे भी वे इन दिनों नाती के ख़यालों में मगन रहतीहैं| महेशचंद्र से कहकर ऊन मँगवाया हैऔरछोटे-छोटे मोज़े, टोपे, स्वेटर बुनने में लगी रहती हैं| अब उधर ठंड भी तो कितनी पड़ती है|

महाबलेश्वरकेवो दो दिन..... वक़्त मानो ठहर सा गया था दीपशिखा और मुकेश के दरम्यान- "यू नो दीप ज़िन्दग़ीकितनी पेचीदा है?"

दीपशिखा के हाथों में मुकेश का एक हाथ था और दूसरे हाथ से वह उसकेबालों से खेल रहा था|नाव झील की सतह पर आहिस्ता-आहिस्ताडोल रही थी| मल्लाह की मौजूदगी कोई महत्व नहीं रखती| उसे पता है इसरोमेंटिक जगह मेंप्रेमी या नये शादीशुदा जोड़े ही अधिक आते हैं| पतवार की छप..... छप में मल्लाह के गीत की लय अजब समाँ बाँध रही थी|दीपशिखा ने उसके होठों पर हथेली रख दी- "नहीं, कुछ मत कहो..... वक़्त को यूँ ही बहने दो|"

मुकेश देर तक दीपशिखा की सपनीली आँखों में देखता रहा..... देखता रहा कि सपनों का हुजूम वहाँ करवटें बदल रहा है कि उन आँखों में ऐसा कुछ है जो और कहीं नहीं दिखता जबकि वह कहना चाहता था कि ज़िन्दग़ी उन्हें खूबसूरत लगती है जो उसे तर्क की नज़र से देखते हैं और उन्हें भयानक जो उसकी आलोचना करते हैं|

“दीप..... ज़िन्दग़ी के मायने बताओगी?”

“मुझे नहीं पता मुकेश..... मेरे लिए ज़िन्दग़ी ईश्वर का दिया वो कालखण्ड है जिसमें मुझे आसमान छूना है और पाताल की गहराईयाँ तलाशनी हैं|”

नाव किनारे लग चुकी थी| मुकेश ने मल्लाह को रुपिए दिये तो उसने झुककर सलाम ठोंका|पास ही स्ट्रॉबेरी का स्टॉल था| लाल-लाल स्ट्रॉबेरी मानो आमंत्रण दे रही थी| मुकेश स्ट्रॉबेरी ख़रीद लाया जिसे खाते हुए दोनों होटल की ओर लौटने लगे|

होटल का एक ही कमरा, एक ही बिस्तर..... एक दूसरे पर कुर्बान दीपशिखा और मुकेश..... खिड़की पर लगे सुनहले और कत्थई परदों की धीमे धीमे हिलती झालर साक्षी थी दोनों के मिलाप की, हवाओं की चंचल तरंग साक्षी थी दोनों के समर्पण की जो बार-बार उन परदों को छेड़ रही थी|दो रातें..... हसीन, नशीलीऔर बहकती दो रातें संग-संग गुज़ार कर जब दोनों मुम्बई लौटे तो दीपशिखाकानिखरा-निखरा खूबसूरत चेहरा देख दाई माँ आश्वस्त हुईं- जब गई थी बिटिया रानी तो थकी-थकी लगती थी, अब थकान का कहीं नामोनिशान न था| वह दीपशिखा की लाई पत्तेदार गाजरें, स्ट्रॉबेरी जैम और स्ट्रॉबेरी से भरा पैकेट थाम किचन की ओर मुड़ी- “चाय बनाएँ बिटिया?”

“नहींकॉफ़ी..... कुछ खाने को भी दो, बड़ी भूख लगी है|”

ज़िन्दग़ी ने रफ़्तार पकड़ ली| छै: महीने गुज़रते देर न लगी| मुकेश भारीउधेड़बुन मेंथा| पापा का हुक्म थाफौरन घर आ जाओ, ममा ने उड़ती उड़ती ख़बर दी थी उसे कि कोई लड़की पसंद की है उन्होंने..... वह पसंद कर ले, हामी भर दे तो शादी की तारीख़ पक्की कर ली जाए|मुकेश का काम में मन नहीं लग रहा था..... क्या करे? दीपशिखा के संग सम्बन्ध बन चुके हैं..... एक तरफ़ यथार्थ है दूसरी तरफ़ यूटोपिया| एक ओर सच्चाई है तो दूसरी ओर स्वप्न..... वह किस सिरे को पकड़े..... दोनों में से एक सिरा तो छूटेगा ही जबकि उसके लिए दोनों सिरे महत्त्वपूर्ण हैं| पापा-ममा को ही समझाना पड़ेगा|सुबह उसने दीपशिखा को फोन किया- “कुछ दिनों के लिए घर जा रहा हूँ| इस बीच तुम अधिक से अधिक पेंटिंग बना लो ताकि लौटकर भोपाल में प्रदर्शनी प्लान कर सकें|”

“अरे..... अचानक| और ज़्यादा पेंटिंग मतलब तुम देर से लौटोगे?” दीपशिखा उदास हो गई|

“नहीं दीप..... जल्दी लौटूँगा..... तुम्हारे बिना क्या रह पाऊँगा मैं..... अब तुम्हारी आदत हो गई है मुझे|”

“सिर्फ़ आदत..... प्रेम नहीं?”

“तुम भी न..... प्रेम से ही तो ज़रुरत उपजती है|आदतउपजती है|”

“बातें बनाना खूब आता है तुम्हें? जाओ, जल्दी लौटना| मैं तुम्हारा इंतज़ार करूँगी|”

स्टूडियो सूना-सूना लग रहा था|हालाँकि सभी संगी साथी थे| बातें भी अमूमन वैसी ही पर मुकेश की कमी के शून्य ने उसे अपनी गिरफ़्त में ले लिया था| दिल में प्यार और बदन में उसके बदन का, छुअन का एहसास..... एक नये दौर से गुज़र रही थी दीपशिखा| उसकी नज़रों में कैद थे महाबलेश्वर के हरे भरे जंगल, बलखाते ऊँचे-नीचे रास्ते, रास्तों पर पसरा सन्नाटा..... सन्नाटे में उसकी और मुकेश की पहचल..... शांत मंथर झील..... झील पर तैरती नावें और मल्लाह के गीत..... वह कैनवास में खुद को पिरोने लगी| पहले लहरें उभरीं जो गति की प्रतीक हैं| जीवन गति ही तो है..... जैसे लहरें अपने साथ बहुत कुछ लाती भी हैं और ले भी जाती हैं| लहरों को उसने कितने कोणों से उकेरा और हर चित्र में लहरों का सौंदर्य नए-नए रूपों में नज़र आने लगा| ओह, कितना रोमांचक है..... एक लहर शरीर में भी समा गई है, मुकेश की छुअन की लहर जो माथे से पैर के अँगूठों तक दौड़ गई थी जब मुकेश के होठ उस पर फिसले थे|

“तुम्हारा बदन जैसे साँचे में ढला हो..... पत्थर कीशिला को तराशकर जैसे मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है|” वह रोमांचित हो उठी थी| अपने इस रोमांच को वह चित्र मेंढालने लगी| एकयुवती गुफ़ा के मुहाने पर ठिठकी खड़ी है| युवती पत्थर की मूर्ति है मगरचेहरेझौंकोंज़िन्दग़ी को पा लेने की आतुरता है| आँखों में इंतज़ार.....ज़िन्दग़ी का..... उसने शीर्षक दिया ‘आतुरता’..... उसे लगा मानो उसकी आतुरता मुकेश तक पहुँची है|वह समंदर के ज्वार सा उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है|पीछे-पीछे फेनों की माला लिए लहरें और रेत में धँस-धँस जाते मुकेश के क़दम..... वह मुड़कर समंदर के बीचोंबीच लाइट हाउस को देख रहा है जो तेज़ ऊँची-ऊँची लहरों पर डोलते जहाज़ों के नाविक को राह दिखाता है|

फिर दौड़ा है मुकेश..... अब की बार उसका लम्बा कुरता, बाल हवा के तेज़ झौंकों में उड़ रहे हैं और वह किसी रोमन सा नज़र आ रहा है..... फिरखुद को उकेरा दीपशिखा ने..... दीपशिखा मुकेश की बाहों में झूल गई है और ज्वार से भरी ऊँची-ऊँची लहरों ने उन्हें भिगो दिया है और समंदर के अंतिम छोर सेचाँदझाँका, हँसा और बादलों में समा गया मगर रुपहली चाँदनी फिर भी फूटी पड़ रही है बादलों से..... समंदर रजत होउठा है|

दीपशिखा ने पूरे हफ़्ते चित्र बनाए| वॉटर कलर्सके साथ-साथ उसने ग्रेफाइट, क्रेयोंस और ऑइल कलर्स का भी इस्तेमाल किया| हल्के-हल्के रंगों की छटा ने उसके चित्र जीवंत कर दिए..... जास्मिन, सना, शादाब, आफ़ताब, एंथनी अवाक़ थे|

“दीपशिखा..... यार, गज़ब के जीवन्त चित्र बनाए हैं| कमाल हो गया..... हम भोपाल की आर्ट गैलरी बुक करवा ही लेते हैं| दिसंबर में जब मौसम खुशनुमा होगा और बाज़ार क्रिसमस के उपहारों से लदा होगा|”

“मगर एंथनी?”

“तो क्या? २५ दिसंबर क्रिसमस के लिए हमेशा से तय तारीख है| हम दिसंबर का पहला हफ़्ता बुक कराते हैं| अभी तो दो महीने बाकी हैं|”

दीपशिखा मुकेश को फोन लगा-लगा कर थक गई पर नॉट रीचेबल..... पहुँच के बाहर|

“मुकेश का घर कहाँ है आफ़ताब?” दीपशिखा बेचैन थी|

“यू.पी. मेंहै..... सुल्तानपुर हैशायद|”

“बताता कहाँ है कुछ अपने बारे में|”

सूरज ढलते ही परिंदे घोंसलों की ओर लौटने लगे| स्टूडियो बंद कर दीपशिखा अनमनी सी घर लौटी| दाई माँ की ज़िद्दके कारण उसे दो निवाले हलक़के नीचे उतारने पड़े| बिस्तर पर लेटी तो लगा सेज काँटों की है, मुकेश ख़ामोश क्यों है? फोन क्यों नहीं करता? बताता क्यों नहीं किवहाँ कौन सी उलझन में है..... कहीं वह धोखा तो नहीं दे रहा? उसे पा लेने की तड़प में वह इतने लम्बे अरसे तक उसके आगे पीछे घूमता रहा और अब..... जब दोनों एक हो गये..... संग-संग जीने मरने की कसमें खा लीं तो वो कौनसा राज़ है जिसे मुकेश उससेछिपारहा है..... नहीं..... नहीं..... वह दीपशिखा को धोखा नहीं दे सकता| ज़रूर किसीमुश्किल से गुज़र रहा होगा| वह सोते-सोते चौंककर उठ बैठती| एस.एम.एस. करती तो फेल हो जाता| ट्राई अगेन..... ट्राई अगेन..... कॉल करती तो नॉट रीचेबल..... आख़िरहुआ क्या है?

कई हफ़्ते बीत गये| भोपाल की प्रदर्शनी के दिन नज़दीक आ गये|दीपशिखा ने अपने चित्रों में प्रेम का संसार रच दिया था| पहले वह गुनगुनाते हुए चित्र बनातीथी इसलिए आसपास की आवाज़ें सुनाई नहीं देती थीं| अबख़ामोशी मुकेशकी ग़ैर मौजूदगी को बढ़ा देती है| उसके ब्रश में से प्रेम के सातों रंग उभर आतेहैं- प्रेम, विश्वास, आतुरता, जुनून, घृणा, तिरस्कार, धोखा.....और उसका ब्रश जुनून से छलाँग मारकर सीधाधोखे पर आ जाता है| आफ़ताब सना के कान के पास फुसफुसा रहा था- “ख़बर पक्की है, मुकेश ने शादी कर ली है|”

जैसे दिल में घूँसा सा लगा हो| कानों में पहुँची इस फुसफुसाहट से पूरे बदन में सनसनी तारी हो गई..... वह नहीं ss की चीत्कार के संग बिखरे रंगों पर ढेर हो गई|

“दीपू..... सम्हालो खुद को| यह तुम्हें क्या हुआ?” शेफ़ाली भी चीख़ी| पल भर को वक़्त स्तब्ध रह गया|

बंद आँखों में भी मानो हर दृश्य उभर रहा था| पापा आये हैं| वह हवाई जहाज से पीपलवाली कोठी लाई गई है|उसका अपना कमरा..... सामने बालकनी की ग्रिल पर चमेली की उलझी उलझी सी लतर पर खिले फूलों की खुशबू नथुनों में समा गई|माली काका गुलाब की छँटाई कर रहे थे| उसकी ऐसी हालत देख कैंची उनके हाथ में धरी की धरी रह गई..... माँ सिरहाने खड़ी डॉक्टर के हर सवाल का जवाब देतीं| डॉक्टर के जाने के बाद लगभग दो घंटे बेहोशी की नींद सोती रही दीपशिखा|उठी तो चिंतातुर माँ को सामने पाया- “मुझे क्या हुआ था माँ?” पूछना चाहा पर तभी सुलोचना बोल पड़ीं- “अब कैसी हो दीपू?”

वह हथेली की टेक लेकर उठी| सुलोचना ने तकियों के सहारे उसे बैठा दिया..... उसने पूछना चाहा क्योंकि अब कोई शंका शेष नहीं थी इसलिए कि उसके साथ ऐसा क्यों हुआ माँ?

“तुम्हारेसारे चित्र बिक गये दीपू..... शेफाली का फोन था कि प्रदर्शनी बहुत सफल रही|”

“सचsss..... माँ.....” खुशी की लहर ने उसके चेहरे को खिला दिया|

“तुमने मेहनत भी तो बहुत की थी| तुम्हारे पापा बता रहे थे कि चित्र बेहद कलात्मक थे| वे तो मोहित हैं तुम्हारी चित्रकारी से|”

भर आई आँखों के बावजूद वह मुस्कुरा पड़ी|

“माँ, मैं कुछ दिन बिल्कुल अकेले रहना चाहती हूँ| खुद का मंथन करना चाहती हूँ, पहचानना चाहती हूँ|”

“हाँ..... तो रहो न इधर|”

“इधर?..... इधर तनहाई कहाँ है, मैंलद्दाख़ जाना चाहती हूँ| बस आठ दस दिन के लिए|”

“पहले पूरी तरह स्वस्थ हो जाओ फिर चली जाना| वहाँ का इंतज़ाम दौलतसिंह से करवा देंगे|”

दरवाज़े के परदे पर टँगी घंटियाँ टुनटुनाईं- “कैसी है मेरी शहज़ादी? ये देखो, पेपर में तुम्हारी तस्वीर|”

“मेरी तस्वीर?”

“तुम्हारे सारे चित्र फिल्म डायरेक्टर नीलकांत ने ख़रीद लिये हैं| इसलिये ख़बर ने भी तीसरे पन्ने पर जगह पाई, तुम्हारे चित्र की और तुम्हारी फोटो के साथ नीलकांत की फोटो..... रातों रात तुम भी स्टार बन गईं दीपू.....”

दीपशिखा ने पापा के हाथ से पेपर लेकर पलँग पर फैला लिया|ओह सेलिब्रिटी पेज पर उसकी तस्वीर उसकी पेंटिंग, उसका नाम..... आँखें उमड़ आईं..... सच है इंसान का जब दिल टूटता है ईश्वर मलहम साथ-साथ भेज देता है| उसे लगा वह पहाड़ से गिरी ज़रूर पर फूलों की घाटी ने उसे लपक कर कोमल बिछावन दे दी|

इतने दिनों बाद दीपशिखाने सबके साथ भरपेट डिनर लिया और गहरी नींद सोई|

क्रमशः.....

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें